संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 13 पृष्ठ : 16 अगस्त 2012 नयी दिल्ली

एक विचारोत्तेजक बहस की शुरूआत

आजादी के नए आयाम

विकास की बात, विज्ञान के साथ

मीडिया चौपाल 2012

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

सह–संपादक
रवि शंकर

संपादक मंडल
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
एक विचारोत्तेजक बहस की शुरूआत 3
न्यू मीडिया क्रांति का साधन 5

परिप्रेक्ष्य
आजादी के नए आयाम 7

साक्षात्कार
वेज बोर्ड लागू कराना सरकार की जिम्मेदारी– मनोज मिश्र 9

संस्मरण
'केसरी' पत्रकार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक 12

परिचर्चा
न्यू मीडिया कहा जाए या कुछ और? 14

विविधा
टैम पर धोखाधड़ी का आरोप 15
48 साल बाद हटी म्यांमार में प्रेस सेंसरशिप 15

मीडिया शब्दावली 16

अब मीडिया लोगों के निशाने पर है। खास तौर पर इलैक्ट्रॉनिक मीडिया के खिलाफ एक बड़ा वर्ग गुस्से का इजहार कर रहा है। गुस्सा इलैक्ट्रॉनिक मीडिया से इसलिये ज्यादा है क्योंकि इसकी पहुंच दूर तक है। उम्मीदें ज्यादा हैं तो जाहिर है नाउम्मीदी भी ज्यादा होगी।

हाल ही के उदाहरणों का संदर्भ लेना काफी होगा। टीम अन्ना के आंदोलन के दौरान कुछ समर्थकों को लगा कि मीडिया जान–बूझ कर आंदोलन को असफल साबित करने की कोशिश कर रहा है। उनमें से कुछ कार्यकर्ता उत्तेजित हो गये और पत्रकारों से दुर्व्यवहार कर बैठे। जैसे ही आंदोलन के गांधीवादी चरित्र पर खरोंच लगती दिखी, आंदोलन के मैनेजर सक्रिय हो गये। आनन–फानन में माफी मांगने का सिलसिला ही नहीं बल्कि प्रतियोगिता प्रारंभ हो गयी। अन्ना तक ने मीडिया के साथ दोबारा बदसलूकी होने पर आंदोलन खत्म करने की धमकी दे डाली। तब जाकर कहीं मामला सुलटा।

दूसरा उदाहरण है असम में हुई घटनाओं के खिलाफ मुंबई में हुए प्रदर्शन के दौरान मीडिया पर हमले का। इस हमले के दौरान आंदोलनकारियों ने विभिन्न चैनलों की तीन ओ बी वैन जला दीं। इसके बाद मीडिया कर्मियों पर पथराव भी हुआ। नाराजगी का कारण यहां भी वहीं था। आंदोलनकारियों को लगता था कि उन्हें मीडिया द्वारा कम कवरेज दिया जा रहा है। चूंकि इन आंदोलनकारियों पर टीम अन्ना जैसा कोई गांधीवादी नैतिक बोझ नहीं था इसलिये आंदोलनकारियों ने पूरी दबंगई के साथ ओ बी वैन में सवार तकनीशियनों को वैन खाली करने का आदेश दिया और फिर उन्हें आग के हवाले कर दिया। यह पंक्तियां लिखे जाने तक उनके किसी नेता ने इस पर खेद जाहिर करने की जहमत भी नहीं उठायी है।

दोनों ही घटनाओं में मीडिया के साथ दुर्व्यवहार करने वाले लोग भीड़ का हिस्सा थे और भीड़ की तरह व्यवहार कर रहे थे। यहां यह कहा जा सकता है कि समर्थकों की भीड़ अक्सर अपने नेताओं के भाषणों को ही नहीं बल्कि उनके इशारों को भी समझती है। इसलिये उसे जैसे संकेत मिलते हैं वह वैसा ही आचरण करती है। भीड़ को संकेत की दिशा में ले जाने के लिये उसके बीच छुटभैये नेता भी मौजूद रहते हैं। इसके लिये मंच से दिये गये भाषण ही नहीं बल्कि बंद कमरों में होने वाली चर्चा से रिस कर आने वाली अफवाहें भी प्रेरक तत्व का काम करती हैं। उपरोक्त दोनों ही उदाहरणों में लगता है ऐसा ही कुछ हुआ होगा।

दोनों उदाहरणों के विश्लेषण से कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहला, मीडिया के बारे में लोगों में आम तौर पर कुछ धारणाएं प्रचलित हैं। सभी को लगता है कि मीडिया का उपयोग कर अपनी बात को बड़ी आसानी से लोगों तक पहुंचाया जा सकता है। इसलिये लोगों को अपने घर से कार्यक्रम या आंदोलन की जगह तक खींच लाने की मशक्कत करने से ज्यादा सरल है मीडिया के जरिये अपनी बात पहुंचाना। अगर आपको मीडिया को आकर्षित करने के लिये जरूरी टोटके आते हैं और आप उन्हें जुटा भी लेते हैं तो आंदोलन की सफलता के प्रति आप निश्चिंत हो सकते हैं।

इसी धारणा का दूसरा भाग है यह मान्यता, कि मीडिया किसी भी खबर को उसके महत्व अथवा अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण नहीं स्थान देता बल्कि उसे मैनेज करना पड़ता है। यही तर्क खिंचते–खिंचते वहां तक जा पहुंचता है जहां कोई एक पक्ष यह विश्वास कर लेता है कि यदि मीडिया मेरे पक्ष को नहीं दिखा रहा है तो इसका अर्थ है कि वह मेरे विरोधी पक्ष द्वारा मैनेज कर लिया गया है। विरोधी पक्ष द्वारा मैनेज होने का संदेह ही दिल्ली या मुंबई जैसी घटनाओं की भूमिका बनाता है।

आम धारणा यह बन चुकी है कि खबरें अधिकांशतः प्रायोजित होती हैं। पहले यह चलन था कि किसी भी आयोजन में मीडिया को आमंत्रित किया जाता था, संवाददाता कार्यक्रम में उपस्थित रहता था और यदि संवाददाता पहुंच नहीं पाता था तो आयोजकों से विज्ञप्ति भिजवाने का अनुरोध करता था। सामान्यतः विज्ञप्ति के साथ यह संदेह बना रहता था कि आयोजक इसमें अपने लिये अनुकूल बातें जोड़ सकता है इसलिये इसे भी क्रॉस–चेक करना जरूरी माना जाता था।

लेकिन अब स्थिति बदल गयी है। यह अब राज नहीं रह गया है कि प्रायः खबरों का आकार और फोटो छपना अब भुगतान के बदले ही संभव है। पत्रकार की कार्यक्रम में उपस्थित रह कर नोट्स लेने में अब कोई रुचि नहीं है। हाल ही में एक कार्यक्रम में एक संवाददाता ने आकर विज्ञप्ति मांगी। यह कहे जाने पर कि अभी तो कार्यक्रम प्रारंभ भी नहीं हुआ है, बिना वक्ता के बोले कैसे उनके भाषण के अंश लिखे जा सकते हैं, संवाददाता ने कहा कि कुछ भी लिख कर दे दो। यह जिज्ञासा प्रकट करने पर कि जो लिखा गया है, वह यदि वक्ता ने बोला ही नहीं तो खबर गलत नहीं होगी, संवाददाता का जवाब था– लगता है आप पहली बार कार्यक्रम करा रहे हो। ऐसे हरिश्चंद्र बनने से काम नहीं चलता।

यह विडंबना ही है कि खबर की आत्मा को नीलाम करने का अपराध ज्यादातर उस समुदाय द्वारा ही हो रहा है जिसके सिर पर उसकी पवित्रता को बनाये रखने की जवाबदेही है। यदि इस क्षरण को रोकने की कोशिश नहीं की गयी तो दिल्ली–मुंबई जैसी घटनाएं हर गली मुहल्ले में होती दिख सकती हैं।

भवदीय
संपादक

एक विचारोत्तेजक बहस की शुरूआत

रवि शंकर

गत 12 अगस्त रविवार को भोपाल में मीडिया चौपाल का आयोजन हुआ। देश भर से लोग इकट्ठा हुए। गरमा गरम भाषण भी हुए और बहस भी चली परंतु सबसे अधिक बुद्धिशील माने जाने वाले इस न्यू मीडिया के महारथियों को सुनते वक्त थोड़ी सी निराशा भी हो रही थी और केवल न्यू मीडिया के मित्रों को ही क्यों दोष दूं, प्रिंट मीडिया के महारथी तो और भी अधिक निराश कर रहे थे। सवाल था कि न्यू मीडिया की संभावनाएं, समस्याएं और चुनौतियां क्या हैं? परंतु इस पर कोई भी विचार तो तब प्रस्तुत कर पाता जब पहले उसने इस न्यू मीडिया के वास्तविक स्वरूप और आयामों को ठीक से समझा होता, इसकी सीमाओं और रूपरेखा की पहचान की होती, इसके स्वभाव और सामर्थ्य का मूल्यांकन किया होता। उदाहरण के लिए एक वक्ता जब यह कह रहे थे कि न्यू मीडिया का विकास मीडिया का लोकतंत्रीकरण है क्योंकि इसने आम आदमी के हाथ में मीडिया थमा दिया है, तो वे यह भूल रहे थे कि आम आदमी को तो पहले भी यह स्वतंत्रता थी ही और वह इसका उपयोग भी कर ही रहा था। क्या इस देश में किसी को कोई अखबार या पत्रिका छापने पर कोई प्रतिबंध है? क्या छोटे–मोटे लोग हजारों की संख्या में पत्र–पत्रिकाएं नहीं निकाल रहे हैं? क्या ऐसी पत्र–पत्रिकाओं का अभाव है जो किसी सामान्य आदमी के व्यक्तिगत प्रयास से निकल रहे हों? ऐसा नहीं है। इसी प्रकार जब एक और वक्ता यह कह रहे थे कि न्यू मीडिया तो व्यक्तिगत सोच से ग्रसित है, या फिर एक और वरिष्ठ पत्रकार ने कहा कि न्यू मीडिया में सूचनाएं तो हैं पर खबरें नहीं, तो वे यह नहीं समझ रहे थे कि प्रिंट मीडिया में भी तो ऐड मैगजीन, संगठनों के मुखपत्र व स्मारिकाएं आदि छापी ही जाती हैं। तो क्या उनको देख कर यह मान लिया जाए कि प्रिंट मीडिया में खबरें नहीं होतीं? वास्तव में यह सारा भ्रम केवल इस कारण था और है कि कोई भी न्यू या प्रिंट मीडिया के अलग–अलग आयामों को समझने की चेष्टा कर ही नहीं रहा।

एक बात तो ठीक कही गई कि न्यू मीडिया पुराने मीडिया का ही विस्तार है और इसलिए इसमें भी वही सारी कमियां व खूबियां हैं जो पुराने मीडिया में थी और हैं। परंतु यह कहने के बाद भी न्यू मीडिया की अनर्गल आलोचना भी की जाती रही। मसलन इसमें खबर नहीं है, तो भाषा काफी खराब है, देशतोड़क ताकतें इसमें सक्रिय हैं, इसके द्वारा नफरत काफी फैलाई जा रही है आदि आदि। परंतु सवाल है कि क्या प्रिंट या इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में ये सारी बातें नहीं हो रहीं? क्या देशतोड़क ताकतें अपना अखबार और चैनल नहीं चला रही हैं? यदि हां, तो इस न्यू मीडिया पर ही सारा गुस्सा क्यों? यही एक बात इस आवश्यकता पर जोर देती है कि अब समय आ गया है कि इस न्यू

मीडिया का विधिवत नामकरण किया जाए और इसके आयामों को पारिभाषित किया जाए ताकि चीजों को गड्ड–मड्ड करने की बजाय उन्हें सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें और फिर उनका सही उपयोग कर सकें।

एक बात तो ठीक से समझ लेने की है कि न्यू मीडिया कोई एलियन जैसी वस्तु नहीं है। यह भी इसी धरती की है और जैसा कि चौपाल में आए एक वरिष्ठ पत्रकार ने कहा, यह वर्तमान मीडिया का ही एक विस्तार है। अंतर केवल संसाधनों के स्वरूप और लागत का है। प्रिंट मीडिया में एक बड़े तंत्र की आवश्यकता होती है जो कि काफी व्ययसाध्य होता है। इसी प्रकार इलैक्ट्रॉनिक चैनल के लिए भी काफी बड़े तंत्र और आर्थिक निवेश की आवश्यकता होती है। परंतु इस न्यू मीडिया में ऐसा नहीं है। यहां एक व्यक्ति अकेला भी एक वेबसाइट चला सकता है। इसमें खर्च काफी कम है और तंत्र की आवश्यकता भी न्यूनतम है। परंतु यहां यह भी ध्यान रखने की आवश्यकता है कि यदि अखबार की टक्कर की खबरें देने वाली वेबसाइट चलानी हो तो वह भी बिना किसी तंत्र और आर्थिक निवेश के संभव नहीं है। यह बात वहां हुई चर्चा से भी सिद्ध हो रही थी। चौपाल में आए अनेक प्रतिभागियों का मानना था कि न्यू मीडिया को विकसित करने व संरक्षित करने के लिए एक आर्थिक तंत्र भी विकसित किया जाना चाहिए ताकि मिशनरी भाव से काम करने वालों को संबल मिल सके। हालांकि कई लोग इस मत के भी थे कि इस न्यू मीडिया को व्यावसायिक स्वरूप नहीं दिया जाना चाहिए, अन्यथा इसका भी परंपरागत मीडिया माध्यमों की तरह ही पतन हो जाएगा। फिर भी बहुमत यही था कि यदि सबके लिए न भी सोचें और व्यावसायिक उद्देश्य न भी रखा जाए तो भी कम से कम मिशनरी लोगों के लिए कुछ साधन अवश्य खड़ा किया जाना चाहिए।

बहरहाल सारी बहस से कुछ बातें तो साफ हो गईं। एक तो यह कि अब इस न्यू मीडिया का कुछ तो नामकरण किया ही जाना चाहिए और इसके आयामों को भी पारिभाषित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ब्लॉग को परंपरागत अर्थों में पत्रकारिता के सांचे में नहीं फिट किया जा सकता। इसी प्रकार फेसबुक और ट्विटर पर सक्रिय लोगों को पत्रकार मानना भी बहुत उचित नहीं कहा जा सकता। हालांकि ऐसे लोगों को संभावित पत्रकार तो माना ही जा सकता है। इसमें भी एक बड़ी संख्या वास्तविक पत्रकारों की भी है जो नियमित रूप से ब्लॉग लिखते हैं। फिर उनके ब्लॉग को पत्रकारिता माना जाए या नहीं? ऐसे कई सवाल और भी होंगे जिन पर बैठ कर विचार किए जाने की आवश्यकता है और यह विचार केवल इस न्यू मीडिया के लोग ही करें, यह भी उचित नहीं है। इसमें परंपरागत मीडिया के धुरंधरों को भी बैठाया जाना चाहिए और उनकी राय ली जानी चाहिए। वैसे भी ये सारे धुरंधर इस न्यू मीडिया में भी सक्रिय हैं ही, इस नाते भी उनकी भागीदारी बनती ही है।

वैसे चौपाल में जो कुछेक गंभीर मुद्दे उठाए गए, वे पत्रकारों द्वारा नहीं, बल्कि भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग में संचार विभाग के निदेशक वैज्ञानिक डा. मनोज पटोरिया द्वारा उठाए गए। उन्होंने पहले तो मीडिया का वैज्ञानिक नामकरण किया परंपरागत मीडिया को एनालॉग मीडिया और न्यू मीडिया को डिजिटल मीडिया का नाम दिया। फिर उन्होंने तीन महत्वपूर्ण बिंदू रखे। पहली बात उन्होंने कही कि अभी भी वेब पर देसी सामग्री का अभाव है। विदेशी सामग्री तो पर्याप्त है पर देसी नहीं और इस कमी को पूरा करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। दूसरी बात उन्होंने कही कि केवल एक ही भाषा में अधिकांश जानकारियां उपलब्ध हैं। उन्हें भारत की शेष 22 भाषाओं के साथ–साथ जनजातीय भाषाओं में भी उपलब्ध कराने की चुनौती हमारे सामने है। तीसरी और सबसे महत्वपूर्ण बात उन्होंने कही कि सोशल नेटवर्किंग के लिए हम अभी तक फेसबुक और लिंक्डइन जैसे विदेशी नेटवर्कों पर आश्रित हैं। इनका देसी विकल्प खड़ा किया जाना चाहिए। डा. पटोरिया की इन बातों पर आगे भी विचार हुआ, परंतु उतना नहीं जितना कि होना चाहिए था। समय का अभाव भी इसका एक कारण था। बहरहाल चौपाल में आए सभी प्रतिभागियों ने इन विषयों पर सहमति प्रकट की और इस पर कुछ करने का विचार भी मजबूत हुआ।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मीडिया चौपाल लोगों को आंदोलित करने और एक विचारोत्तेजक बहस को छेड़ने में कुछ हद तक सफल रही। परंतु यह भी लगा कि इस बहस को अब आगे बढ़ाए जाने की भी आवश्यकता है। ऐसे आयोजन नियमित रूप से हों तो बाकी मुद्दों को भी सुलझाया जाना सरल हो सकता है। ■

न्यू मीडिया क्रांति का साधन

राम माधव

संघ के पदाधिकारी के रूप में ही नहीं मैं आज यहां एक पत्रकार के रूप में भी उपस्थित हूं। शुरूआत में दस वर्ष मैंने भी एक मासिक का संपादन किया था। उसके बाद आज भी जिसे न्यू–मीडिया कहते हैं, उसमें अपना योगदान देता रहता हूं। उस अनुभव के आधार पर मैं कुछ बातें कहूंगा। मैं देख रहा हूं कि आम तौर पर बहस में न्यू–मीडिया को मीडिया के नए संस्थान के रूप में देखने का प्रयास होता है। मैं इसे मीडिया का लोकतंत्रीकरण मानता हूं। आम व्यक्ति के लिए स्टेट मीडिया अथवा कॉरपोरेट मीडिया में बहुत कम स्थान है। आम व्यक्ति के विचार के लिए मुख्यधारा की मीडिया में स्थान नहीं है। इसलिए न्यू–मीडिया उसके विकल्प के रूप में उभरा है। न्यू–मीडिया को मीडिया का संस्थान मानना सही नहीं होगा। जबकि प्रारंभ से ही इसको सांस्थानिक स्वरूप देने का प्रयास किया जाता रहा है। मैं तो कहूंगा कि न्यू–मीडिया की स्वतंत्रता पर कोई रोक नहीं लगानी चाहिए, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को इसके प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

न्यू मीडिया के कारण आज जो मुख्यधारा की मीडिया के खत्म होने के बारे में कहा जाता है मैं ऐसा नहीं मानता। न्यू–मीडिया आज मुख्यधारा की मीडिया के लिए स्रोत के रूप में विकसित हुआ है। जो खबर देर तक नहीं आती वह ट्विटर पर मिलती है। न्यू–मीडिया आम व्यक्ति की अभिव्यक्ति का एक साधन है। इस मीडिया की विशेषता यह है कि इसके लिए बहुत बड़े सांस्थानिक तंत्र की आवश्यकता नहीं है। हमारे हाथ में एक लैपटॉप हो व एक डेटा कनेक्शन हो तो मैं सशक्त हूं। यह आजादी न्यू–मीडिया ने दी है। लेकिन इससे डरने का कोई कारण नहीं है। यह क्या नुकसान कर सकता है? अच्छे समाज का निर्माण किया जाए तो यह मीडिया भी अच्छे काम ही करेगा। समाज में बहुत से अच्छे लोग हैं जो समाज को अच्छा करने का प्रयास कर रहे हैं। उनके लिए अपने अच्छे विचारों को देश–दुनिया तक ले जाने का यह अच्छा साधन है। आज आवश्यकता दो चीजों की है। पहले तो मुख्यधारा की मीडिया को संभालना चाहिए। एक समय था जब आजादी का आंदोलन था तो देश के कई बड़े नेताओं ने पत्रकारिता को साधन के रूप में प्रयोग किया था। गांधी जी पत्रकारिता करते थे, तिलक पत्रकार थे। तमाम लोगों ने आजादी के आंदोलन के लिए मीडिया को प्रयोग किया। तब मीडिया नहीं था, क्रांति का साधन था। आज जिसे हम न्यू–मीडिया कह रहे हैं वह भी उस समय के मिशनरी मीडिया जैसा ही है। लेकिन आजादी के बाद मीडिया पेशेवर हुआ। हमने भी मीडिया संस्थान बनाए और कॉलेज भी खोले। मुझे तो पेशेवर पत्रकार की बात विडंबना लगती है। मीडिया एक कदम आगे बढ़कर 'इंडस्ट्री' हो गया है। एक बहुत बड़ा अखबार है जिसमें सबसे वरिष्ठ हैं एक्जीक्यूटिव मैनेजिंग एडिटर। एक कार्यक्रम में उनसे मिलना हुआ तो उनसे मैंने पूछा कि यह कौन सा पद है? उन्होंने बताया कि संपादक बने रहने का प्रबंध करता हूं इसलिए एक्जीक्यूटिव मैनेजिंग एडिटर कहलाता हूं।

पिछले दिनों शशि थरूर ने एक पुस्तक में लिखा कि पाकिस्तानी मीडिया एवं भारतीय मीडिया एक–दूसरे के खिलाफ बढ़–चढ़ कर खबरें प्रसारित करता है। इसका पता लगाने के लिए उन्होंने पाकिस्तान के पत्रकार फहाद हुसैन से बात की जिसने पाकिस्तान में कई मीडिया संस्थानों को खड़ा किया है। फहाद हुसैन ने कहा कि मैं भारत गया था तो वहां देखा कि किस प्रकार से मीडिया को खड़ा करना है। शशि थरूर ने कहा कि ''क्या भारत में आपने यही सीखा?'' फहाद का जवाब था, ''मैंने भारत की मीडिया से यही सीखा कि जिम्मेदारी से महत्वपूर्ण है चर्चित होना।''

अगर यह सच है, जो शशि थरूर ने कहा, तो मैं मानता हूं कि न्यू–मीडिया से भी ज्यादा जवाबदेही मुख्यधारा के मीडिया की है। आज हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि मीडिया में जो तथाकथित बुद्धिजीवी और पत्रकार बैठे हैं उनके ऊपर भी न्यू–मीडिया के कारण एक बंधन है। यदि कोई संपादक गलत समाचार चलाता है

तो लोग सोशल मीडिया पर उससे जवाब मांग सकते हैं। पहले समाचार पत्र के संपादक को पत्र लिखना पड़ता था, आज यदि किसी पत्र के बारे में बात कहनी है तो उसके फेसबुक पेज पर आप अपनी बात कह सकते हैं।

न्यू–मीडिया ने पत्रकारिता में जवाबदेही निर्माण करने का काम किया है। जनता सशक्त होती है न्यू–मीडिया से। न्यू–मीडिया के माध्यम से संवैधानिक पदों पर बैठे लोगों से जवाबदेही लेने का साधन बनकर उभरा है न्यू–मीडिया। लेकिन इसे सांस्थानिक बनाना ठीक नहीं। हमारे यहां कवि होता है, उसकी सीमा आसमान होती है, किंतु वह उससे भी ऊपर जाकर लिखता है। किसी से डरता नहीं है। ऐसी ही पत्रकारिता है न्यू–मीडिया। यह किसी मैनेजर अथवा मालिकों के दिशानिर्देश से नहीं चलता है। देश के लिए मैं इसे बहुत उपयोगी मानता हूं। हिंदी कवि नागार्जुन की पंक्तियां हैं – 'हमको क्या डरना है, हमने तो खोया है, उनको भी, इनको भी।' हमको क्या डर है? जहां गलती है, वहां हम प्रश्न खड़ा करेंगे। इस मीडिया की वह ताकत है।

इंटरनेट ज्ञान का माध्यम है। हमें चाहिए कि इससे हम जो प्राप्त करें उसे समाज में आगे बढ़ाएं। किंतु, शब्दों एवं शुचिता का ध्यान रखना भी आवश्यक है। एक बात और है। कभी–कभी हमें अहंकार होता है कि देश को हम चला रहे हैं। ऐसे अहंकार को भी न्यू मीडिया तोड़ता है। कुलदीप नैयर का एक कॉलम आता था, 'बिटवीन द लाइन्स'। न्यू–मीडिया भी 'बिटवीन द लाइन्स' ही बोलता है। अभिव्यक्ति की आजादी इसमें है। हमने संविधान में अभिव्यक्ति की आजादी का हक आम जनता को दिया है। किंतु, इसे सही मायनों में न्यू–मीडिया ने प्रदान किया है। दो वर्ष पहले एक बहुत बड़े पत्रकार थे, इंटरव्यू के दौरान उनसे बात हुई तो उन्होंने बताया मैं बीस वर्ष से पत्रकारिता में हूं। मैं संघ के बारे में सोचता था कि संघ पूर्णतया सांप्रदायिक है। यह देश हित के लिए अच्छा संगठन नहीं है। मैं यह कहता भी था। लेकिन आज बीस वर्ष बाद आपका इंटरव्यू ले रहा हूं। आज आप मुख्यधारा में है और हम नेपथ्य में हैं। मैंने कहा आप अपनी ताकत को बढ़ा कर आंकते हैं और लोगों की बुद्धि को कमतर आंकते हैं। परंतु ऐसा नहीं है। लोग बुद्धिजीवी हैं वे सब बात समझते हैं। विवेकानंद ने भी मिशनरियों से कहा था कि आप उन्हें शिक्षा दें, चिकित्सा दें, किंतु आप उन्हें बहकाने का प्रयास न करें। भारत का व्यक्ति बहुत बुद्धिमान है। कोलंबिया यूनिवर्सिटी का शोध था कि दुनिया की किसी भी नस्ल के मुकाबले भारत का सामान्य व्यक्ति अधिक बुद्धिमान है। इस बुद्धिमत्ता को प्रकट करने का साधन बना है न्यू–मीडिया। न्यू–मीडिया ने लोगों को अपनी बात कहने का अवसर दिया है।

(मीडिया चौपाल में दिए गए भाषण पर आधारित) ■

कश्मीर घाटी में मीडिया भी सुरक्षित नहीं

अब तक कश्मीरी पंडितों एवं सिखों को निशाना बनाने वाले कश्मीर के आतंकियों ने अब मीडिया को अपना निशाना बनाया है। दहशतगर्दों ने मीडिया को चेतावनी देते हुए कहा है कि वह घाटी में चल रहे आंदोलनों को सकारात्मक रूप से प्रस्तुत करे। अन्यथा नतीजे भुगतने को तैयार रहे।

आतंकियों ने यह फरमान मीडिया को पोस्टर अथवा अन्य किसी माध्यम से नहीं बल्कि पत्र के माध्यम से सुनाया है। इस पत्र में आतंकी कमांडर अबु इरफान ने मीडिया को धमकाते हुए लिखा है कि मीडिया भारतीय एजेंसियों के कहने पर कश्मीर घाटी में चल रहे जिद्दोजहद और जिहाद को नकारात्मक रूप से प्रस्तुत कर रहा है। आतंकी कमांडर ने लिखा है कि नकारात्मक रिपोर्टिंग करने वाले चैनलों और पत्रों को हम खबरदार करते हैं कि वे तहरीक–ए–आजादी के आंदोलनों की सकारात्मक रिपोर्टिंग करें। वह मुजाहिदों के कारनामों को बेहतर ढंग से दिखाएं वरना नतीजे भुगतने को तैयार रहें।

पत्रकारों के अलावा आतंकियों ने अपने खत में संपादकों को भी यह फरमान सुनाया है कि वे अखबारों में इस पत्र को प्रकाशित करें। वहीं आईजी एसएम सहाय ने आश्चर्यजनक रूप से मामले से अनभिज्ञता जताई है। सहाय का कहना है कि उन्हें इस प्रकार के किसी भी पत्र के बारे में मीडिया की ओर से कोई लिखित शिकायत नहीं मिली है। गौरतलब है कि कुछ दिनों पहले बडगाम जिले के कश्मीरी पंडितों को भी घाटी छोड़ने का फरमान सुनाने वाला पत्र मिला था।

आजादी के नए आयाम

जयप्रकाश सिंह

समय का प्रवाह शब्दों में नए आयाम जोड़ता है, घटाता है और कभी–कभी शब्द का अर्थ ही बदल देता है। आजादी एक ऐसा शब्द है जिसके अर्थ में बदलाव तो नहीं हुआ है लेकिन पिछले 7 दशकों में कई नए आयाम जुड़े हैं। यह नए आयाम गुलामी के स्वरुप और प्रकृति में आए व्यापक बदलाव के कारण जुड़े हैं। आजादी की 66वीं वर्षगांठ मना रहा यह देश 15 अगस्त 1947 को मिली आधी–अधूरी राजनीतिक आजादी का जयगान कर रहा है, जबकि इसी दौर में गुलामी ने राजनीतिक सीमाओं को तोड़कर नए क्षेत्रों में प्रवेश कर लिया है। राजनीतिक क्षेत्र से प्रारम्भ हुई गुलामी की यात्रा अब आर्थिक क्षेत्र का पड़ाव पार कर सांस्कृतिक क्षेत्र तक पहुंच चुकी है।

हमने राजनीतिक साम्राज्यवाद से मुक्ति प्राप्त की थी, लेकिन वर्तमान में आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के अधीन जीने को अभिशप्त हैं। खतरनाक बात यह है कि साम्राज्यवाद और गुलामी का चेहरा हर पड़ाव पर अधिक मनमोहक हो रहा है लेकिन इसका प्रभाव अधिक जनसंहारक होता जा रहा है। जब हमने आजादी प्राप्त की थी तब साम्राज्यवाद राजनीतिक क्षेत्र से आर्थिक क्षेत्र में प्रवेश कर रहा था और आज हम जिस काल में जी रहे हैं वह आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की दुरभिसंधि का काल है। ऐसे में, आजादी को ठीक ढंग से पारिभाषित करने के लिए गुलामी की परिर्वतन यात्रा का विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम मूल रूप से राजनीतिक साम्राज्यवाद के खिलाफ लड़ी गयी लड़ाई थी। 1950 तक भारत में ही नहीं एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के अधिकांश देशों में राजनीतिक साम्राज्यवाद का पराभव हो चुका था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि पूरी दुनिया गुलामी के चंगुल से भी मुक्त हो गई। राजनीतिक साम्राज्यवाद के पराभव होने से पहले आर्थिक साम्राज्यवाद अस्तित्व में आ चुका था। आर्थिक साम्राज्यवाद की संकल्पना द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात अस्तित्व में आयी। आर्थिक साम्राज्यवाद की अवधारणा का ध्येय सैद्धांतिक और व्यवहारिक रूप से राजनीतिक साम्राज्यवाद को पदच्युत करना था। जब आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए कोई देश सैनिक हस्तक्षेप के जरिए किसी अन्य देश पर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित कर लेता है तो उस प्रक्रिया को राजनीतिक उपनिवेशवाद अथवा राजनीतिक साम्राज्यवाद का नाम दिया जाता है।

इतिहास इस बात की गवाही देता है कि यूरोपीय देशों ने अतिरिक्त उत्पादन को बेचने तथा कच्चा माल प्राप्त करने के लिए एशिया,

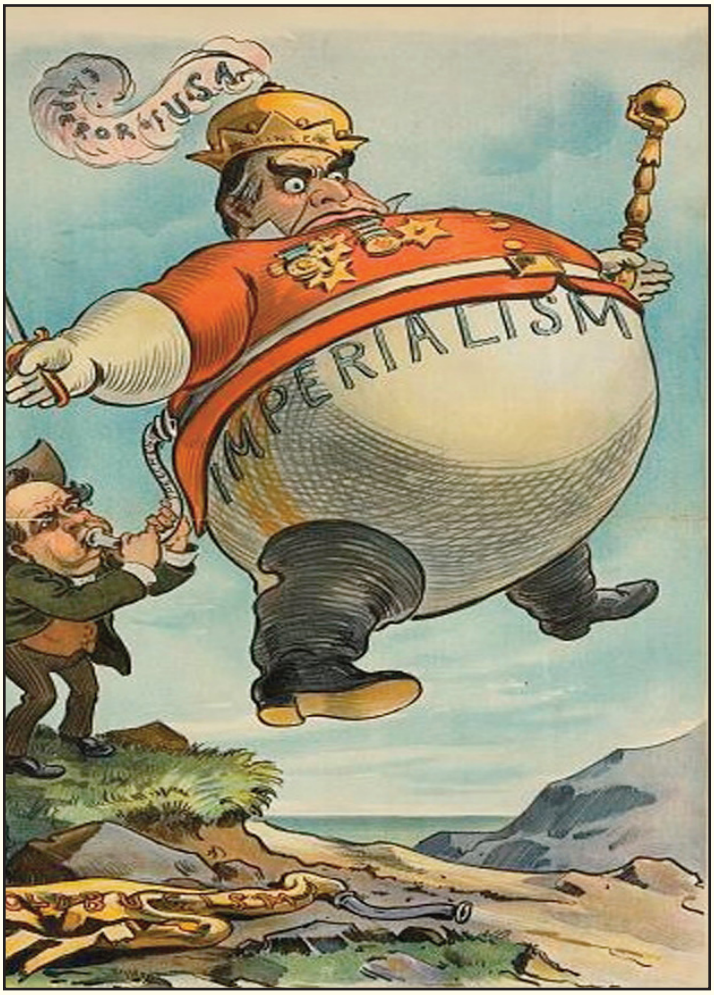

अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिकी देशों को अपना राजनीतिक उपनिवेश बनाया। अधिक से अधिक उपनिवेश बनाने की होड़ के कारण ही प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध हुए। दो विश्वयुद्धों में हुई धन–जन की भयंकर हानि के कारण आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न देशों को इस बात का आभास हुआ कि अन्य देशों पर प्रत्यक्ष राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की प्रक्रिया को भविष्य में आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। यह बहुत जटिल प्रक्रिया थी और इसमें स्थानीय स्तर पर प्रतिरोध की व्यापक संभावनाएं भी होती है। विदेशी तत्वों की प्रत्यक्ष उपस्थिति स्थानीय अस्मिता को प्रतिरोध के लिए उकसाती थी। इसलिए, राजनीतिक साम्राज्यवाद की प्रक्रिया में अपने साम्राज्यवाद को टिकाए रखने के लिए विदेशी शक्तियों को धन–जन का व्यापक पैमाने पर निवेश करना पड़ता था। दूसरी तरफ सत्ता को बनाए रखने के लिए अपनाए जाने वाले नृशंस और अमानवीय तरीकों के कारण भी वैश्विक शक्तियों के सफेद चोले पर काले धब्बे पड़ते थे।

राजनीतिक साम्राज्यवाद की राह में आने वाली इन तमाम कठिनाईयों से बचने के लिए शोषणकारी शक्तियों ने अपनी कार्यपद्धति

और रणनीति में व्यापक परिवर्तन किए। उन्होंने अब प्रत्यक्ष की बजाय अप्रत्यक्ष नियंत्रण की रणनीति पर काम करना शुरु किया। अन्य देशों पर अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण स्थापित करने की प्रक्रिया का प्रारम्भिक चरण आर्थिक साम्राज्यवाद के नाम से जाना जाता है। इस प्रक्रिया में किसी देश के भूभाग अथवा सत्ता पर प्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित करने के बजाय उन पर ऐसी आर्थिक नीतियां थोप दी जाती है कि विपन्न देश की सम्प्रभुता विकसित देशों के नीति–नियंताओं के हाथों में स्थानांतरित हो जाती है। राजनीतिक साम्राज्यवाद की वाहक अमीर देशों की सेना होती है तो आर्थिक साम्राज्यवाद की वाहक बहुराष्ट्रीय कम्पनियां होती हैं।

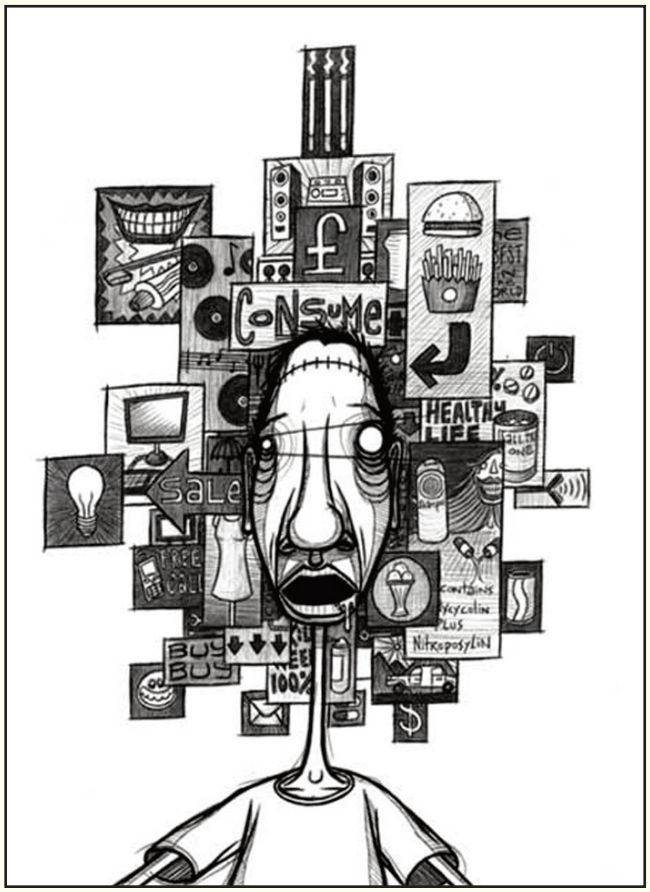

आर्थिक साम्राज्यवाद की शुरुआत बहुपक्षीय आर्थिक समझौते गैट से होती है और 1995 में विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने तक यह प्रक्रिया अबाध गति से आगे बढ़ती है। विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने से पहले होने वाली युरुग्वे दौर की वार्ता में पहली बार आर्थिक साम्राज्यवाद के चेहरे से दुनिया ठीक ढंग से परिचित हुई। विश्व व्यापार संगठन के बाद प्रारम्भ होने वाली सिंगापुर वार्ता ने इस बात को उघाड़कर रख दिया कि बहुपक्षीय व्यापार समझौतों के नाम पर गरीब देशों के प्राकृतिक संसाधनों को लूटने और व्यापार पर कब्जा करने की क्रूर कोशिश है। सम्भवतः इसी कारण सन 2000 के बाद बहुपक्षीय व्यापार समझौते में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो सकी है।

आर्थिक साम्राज्यवाद मे सन 2000 के बाद आए ठहराव से यह आशय नहीं निकाला जाना चाहिए कि साम्राज्यवादी शक्तियां हतबल हो गयी है। आर्थिक साम्राज्यवाद में आने वाले ठहराव और प्रतिरोध को भांपते हुए साम्राज्यवाद ने अपना चोला फिर बदल लिया है। अब देश पर कब्जा करने के बजाय देश के नागरिकों को अपने कब्जे में करने की कोशिश की जा रही है। साम्राज्यवाद के नवस्वरुप को सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का नाम दिया गया है।

सांस्कृतिक साम्राज्यवाद संचार माध्यमों के कंधे पर चढ़कर प्रत्येक व्यक्ति का दरवाजा खटखटा रहा है। इस प्रक्रिया के तहत व्यक्ति के जीवनदर्शन और जीवनशैली को प्रभावित कर उसे बाजारवादी मूल्यों के अनुरुप बनाने की कोशिश की जा रही है। यह प्रक्रिया साम्राज्यवाद के अन्य स्वरुपों की अपेक्षा अधिक मारक और घातक है। इस प्रक्रिया में व्यक्ति स्वयं अपने अंतःकरण की हत्या कर देता है और अपने को बाजारवादी मूल्यों तथा उपभोक्तावादी जीवनशैली को सौंप देता है। यह प्रक्रिया अधिकतम उपभोग को ही जीवन के चरमलक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करती है और उपभोक्तावादी जीवनशैली को अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत करती है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद में प्रतिरोध की संभवनाएं भी बहुत क्षीण होती है क्योंकि सूचनाओं की सतत बमबारी के जरिए व्यक्ति के मस्तिष्क को इस तरह 'प्रोग्राम' कर दिया जाता है कि साम्राज्यवाद द्वारा व्यक्ति के शोषण के लिए प्रस्तुत विकल्पों को ही अपने हित के लिए अपरिहार्य मान लेता है।

वर्तमान दौर में व्यक्ति आर्थिक–सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की दुरभिसंधि में जीने को विवश है। इस दुरभिसंधि के कई आयाम हैं। इसमें से कुछ की पहचान की जा चुकी है, जबकि कुछ अब भी अचिन्हित है। इस दुरभिसंधि के निर्माण में मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, इसलिए मीडियाई परिप्रेक्ष्य में आजादी शब्द के अर्थ का पुनर्पाठ आवश्यक बन जाता है।

स्वतंत्रता पूर्व मीडिया की आजादी को व्यवस्था की आजादी की पूर्व शर्त के रूप में देखा जाता था। स्वतंत्रता के बाद भी मीडिया की आजादी को एक चरम मूल्य के रूप में बनाए रखा गया। हालांकि इसी दौर में आपातकाल के दौरान मीडिया की आजादी का गला घोंटने का प्रयास किया गया, लेकिन मीडिया की आजादी में लोगों के अटूट विश्वास के कारण सत्ता इसमें सफल नहीं हो सकी। कुल मिलाकर कह सकते हैं कि अब तक मीडिया और आजादी के अंतर्सम्बन्धों का विमर्श मीडिया की आजादी तक सीमित रहा है। लेकिन 1990 के बाद से मीडिया की आजादी के प्रति अक. ादमिक जगत और आमजगत में आकर्षण घटा है। कारण साफ है, मीडिया अब लोगों की आजादी को बचाए और बनाए रखने का हथियार नहीं रह गया है। कारपोरेट घरानों के इशारे पर अब मीडिया आम लोगों की आजादी को कुचलने पर आमादा है। मीडिया की आजादी का विमर्श धीरे–धीरे मीडिया से आजादी का विमर्श बनता जा रहा है। यह विमर्श विस्थापन मीडिया की परम्परागत छवि और मूलचरित्र की हत्या कर सकता है। मीडिया के पास अब भी आत्म रक्षा का एक उपाय शेष है, आजादी के नए आयामों के प्रति जागरुकता और सम्पूर्ण आजादी के प्रति ललक पैदा कर मीडिया अपने लिए एक रक्षा कवच का निर्माण कर सकता है। ■

वेज बोर्ड लागू कराना सरकार की जिम्मेदारी– मनोज मिश्र

पत्रकारिता के क्षेत्र को आज कैरियर की दृष्टि से सुरक्षित नहीं माना जा रहा है। साथ ही पत्रकारिता के आदर्शों एवं मूल्यों में भी गिरावट आ रही है। पत्रकारिता से जुड़े ऐसे ही विभिन्न मुद्दों पर हमने लंबे समय से 'जनसत्ता' दैनिक से जुड़े मनोज मिश्र से विस्तृत बातचीत की। प्रस्तुत हैं उनसे बातचीत के प्रमुख अंश :

पत्रकारिता के क्षेत्र में आपका आगमन कब हुआ और इस क्षेत्र में आपके क्या संघर्ष रहें?

1985 में मैं दिल्ली आया था। उससे पहले मैं विद्यार्थी राजनीति में था। 1986 में मैंने दिल्ली में जनसत्ता के लिए कैम्पस रिपोर्टिंग शुरू की। लेकिन तब मैं पार्ट टाइम में था। सन 1989 में मुझे पश्चिमी उत्तर प्रदेश भेजा गया। मैं 7 साल पश्चिमी उत्तर प्रदेश में रहा, केन्द्र मेरठ था। उस समय समाचार पत्रों ने कवरेज की दृष्टि से उत्तर प्रदेश को दो भागों बांट रखा था। पश्चिम क्षेत्र का केन्द्र मेरठ था, जबकि पूर्वी क्षेत्र का केन्द्र लखनऊ था। तब उत्तराखण्ड भी उत्तर प्रदेश का ही भाग था। यह वह दौर था जब किसान आंदोलन, अयोध्या आंदोलन एवं बसपा की राजनीति अपने उभार पर थी। 1996 में मैं दिल्ली वापस आया। दिल्ली में पहले मैंने लोकल रिपोर्टिंग की, जिस दौरान मैंने लगभग सभी बीट पर रिपोर्टिंग की। उसके बाद मुझे 1999 में चीफ रिपोर्टर बना दिया गया। पिछले 26–27 वर्षों से दिन–प्रतिदिन की रिपोर्टिंग से मैं जुड़ा ही रहा हूं।

विद्यार्थी राजनीति से पत्रकारिता के क्षेत्र में आने का क्या कारण रहा ?

प्रारंभ में मैंने सोचा यह था कि अध्यापक बनूंगा। मैं दिल्ली आया भी इसी तैयारी से था कि एम. फिल में दाखिला लूंगा, पी.एच.डी करूंगा और अध्यापक बनूंगा। संयोग से जब मैं जमशेदपुर से दिल्ली आया तब दाखिले बंद हो चुके थे। कुछ दिन के लिए कुछ काम करना चाहिए तो मैंने जनसत्ता में बिहार की कुछ घटनाओं पर लिखना शुरू किया। जनसत्ता के मेरे वरिष्ठ साथियों ने उत्साह बढ़ाते हुए कहा कि तुम ठीक लिख लेते हो, तो पत्रकारिता ही करो। उसके बाद से मैं पत्रकारिता में ही रम गया।

आपने जनसत्ता को लंबा समय दिया है, वर्तमान समय में मीडिया में नौकरियां स्थायी नहीं रह गई हैं। आप इसका क्या कारण मानते हैं ?

मेरा मानना है कि यह व्यक्ति पर भी निर्भर है। ऐसे कुछ ही लोग होंगे जो इतने लंबे समय तक किसी एक संस्थान से जुड़े रहें। पहली बात तो यह कि आपको किसी भी नौकरी में कुछ बातों को मानकर ही चलना पड़ेगा। यदि आप मालिक की भी सुनेंगे तो ऐसा नहीं है कि नौकरी स्थायी न रहे। मुझे कभी जनसत्ता में अस्थायित्व नहीं लगा। लेकिन जब इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का दौर आया तो मुझे कई लोगों ने कहा और स्वयं भी लगा कि मुझे वहां जाना चाहिए। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में जाने के लिए मेरे मित्रों ने बात भी की। मुझे चुनावों के दौरान भी जाने का मौका मिला जो पत्रकारिता में सबसे ग्लैमरस दौर होता है, लोगों ने कहा कि छोड़ कर हमारे यहां आ जाओ। लेकिन मुझे लगा यह तो संस्थान के साथ धोखा है, इतने दिनों मैंने इस संस्थान में काम किया और जब सही दिन आए तो चल दिया। यह सोचकर मैं जनसत्ता छोड़कर नहीं गया। मेरा मानना है कि यदि सही से कार्य किया जाए तो बार–बार संस्थान बदलने की जरूरत नहीं पड़ती है।

प्रभाष जोशी के दौर के जनसत्ता में और आज के जनसत्ता में आप क्या बदलाव देखते हैं ?

काफी अंतर आया है। प्रभाष जोशी ने एक बड़ी लकीर खींच दी थी। प्रभाष जी अखबार के मालिक की तरह व्यवहार करते थे। अगर, प्रभाष जी ने हां कह दी तो वह काम हो ही जाता था। वे सभी की समस्याओं

को सुनते थे और उसका निराकरण भी करते थे। उनके जाने के बाद जो संपादक आए उन संपादकों ने खबरों में तो कोई बहुत दखल नहीं दिया लेकिन, प्रबंधन पर उनकी वह पकड़ नहीं रही। प्रबंधन ने इस पत्र को भी व्यावसायिक अखबार बनाने की कोशिश की जो नहीं बना। इसका खामियाजा अखबार भुगत रहा है। प्रभाष जी ने जनसत्ता की इंडियन एक्सप्रेस से बराबरी करवाई थी। पहले जहां हम इंडियन एक्सप्रेस के समाचार को अनुवाद करके अपने अखबार में लगाते थे लेकिन, प्रभाष जी के समय में कई बार जनसत्ता की खबरें भी अनूदित करके इंडियन एक्सप्रेस में लगती थीं। यह स्थिति अब नहीं रही। लेकिन प्रभाष जी ने जो परंपरा कायम की थी कि रिपोर्टर की खबरों में किसी का दखल न हो तो वह आज भी कायम है। किंतु, आज उस प्रकार का विरोध का जमाना भी नहीं रहा। प्रतिष्ठान विरोधी जो जनसत्ता की छवि थी वह अब नहीं रही। प्रभाष जी जितना आगे जाने की न किसी में हिम्मत है, न संभव है, न ही ऐसा माहौल है।

संपादक की परंपरा से आगे बढ़ कर मीडिया प्रबंध संपादक तक पहुंच गया है। इसके पीछे आप किन कारणों को जिम्मेदार मानते हैं ?

अब तो अखबार ब्रांड बन गए हैं। तेल, साबुन एवं अन्य उत्पादों की तरह से ही अखबारों को भी बेचा जा रहा है। हमारे यहां जनसत्ता में तो काफी हद तक यह परंपरा कायम है जबकि, इसके चलते अखबार को काफी नुकसान भी उठाना पड़ा है। मैं तो दंग हूं कि दिल्ली के सबसे बड़े हिंदी के अखबार में स्वतंत्रता दिवस के मौके पर बैनर खबर में यह बताया जाता है कि लोग बड़ी संख्या में मॉल्स में पहुंच रहे हैं। सामान्य परंपरा रही है कि यदि कोई असामान्य घटना न घटे तो स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्र दिवस में प्रधानमंत्री अथवा राष्ट्रपति के भाषण को ही प्रमुख खबर बनाया जाता है। यह सब प्रबंध संपादक और कार्यकारी संपादक की व्यवस्था का ही नतीजा है। अधिकतर अखबारों में तो संपादक की परंपरा ही समाप्त हो गई है, जहां बचे भी हैं वहां भी नाम के ही हैं। मान लीजिए, 27–28 वर्ष का मेरा कैरियर है और अचानक ही कोई 22 वर्ष का एमबीए पढ़ा हुआ विद्यार्थी यदि मुझे दिशानिर्देश दे कि यह खबर बॉटम दो और यह एंकर होगी तो यह सही कैसे हो सकता है ? प्रभाष जी से एक कार्यक्रम में सायं टाइम्स के संपादक ने इंदौर में बताया था कि उन्होंने सायं टाइम्स की लीड बनवा दी कि सर्दी में कितने लोग सड़कों पर सोते हैं और दिल्ली देश की राजधानी है। उन्हें अगले दिन ब्रांड मैनेजर ने बुलाया और कहा आपने यह क्या कर दिया। हमारा अखबार उन लोगों में नहीं पढ़ा जाता जो सड़कों पर सोते हैं। कह सकते हैं कि पत्रकारिता के मानकों में बदलाव आया है।

इलैक्ट्रॉनिक मीडिया और वेब मीडिया के उदय के दौर में समाचार पत्रों का आप क्या भविष्य मानते हैं ?

समाचार पत्रों का भविष्य उज्जवल है। आज भी बहुत से गांवों में बिजली पहुंची ही नहीं है। इंटरनेट और वेब तो पता नहीं कब पहुंचेगा। आज भी यह प्रचलन है कि समाचार पत्र में जो खबर छपी उसे यदि सुबह नहीं पढ़ पाए तो उसे शाम को पढ़ते हैं, शाम को भी नहीं पढ़ा तो दो दिन बाद पढ़ सकते हैं। यह सहूलियत अखबार ही देता है। यह जरूर है कि तेजी से समाचार पहुंचाने के मामले में इलैक्ट्रॉनिक अथवा वेब मीडिया ने अपनी बढ़त कायम की है। लेकिन अखबारों का सर्कुलेशन भी बढ़ा ही है, अखबारों के छपने की संख्या भी बढ़ती ही जा रही है। लोगों की क्रयशक्ति बढ़ने के कारण भी अखबारों को खरीदने–पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ी है।

वेब मीडिया के आने के बाद समाचार पत्र वेब मीडिया से ही विभिन्न खबरों को लेते हैं। क्या इससे खबर की सत्यता प्रभावित नहीं होती है ?

इससे कुछ तो प्रभाव पड़ता ही है। लेकिन इससे विविधता भी आती है। आप वेब पत्रकारिता को खारिज नहीं कर सकते। उससे भी पढ़े–लिखे लोग जुड़े हैं, लोग उसे पढ़ते भी हैं, जाहिर है कि वेब पत्रकारिता का वजूद है। यदि कोई अखबार उससे समाचार ले रहा है तो उसमें कुछ गलत नहीं है। लेकिन इससे प्रिंट मीडिया खत्म हो जाएगा मुझे ऐसा नहीं लगता है।

राष्ट्रीय स्तर के अखबारों में क्षेत्र विशेष की खबरें छाई रहती हैं। जबकि कई राज्यों को कवरेज नहीं मिल पाती। क्या इसे अखबारों का राष्ट्रीय स्वरूप कहा जाएगा ?

यह बड़ा मुद्दा है। कई बार किसी एक जिले को ही पूरा पृष्ठ दिया जाता है, यह सही नहीं है। स्थानीय खबरें दी जानी चाहिए लेकिन, सही अनुपात में। कुछ समाचार ऐसे हैं जो सभी जगह पढ़ने योग्य हैं उन्हें दिया जाना चाहिए लेकिन, आम खबरों को भी देना सही नहीं है। अभी जो खबर आ रही है कि पूर्वोत्तर के लोग घरों में लौट रहे हैं यह राष्ट्रीय खबर नहीं है प्रादेशिक खबर है। यदि अखबार मालिक सामर्थ्यवान हैं तो उन्हें प्रमुख अखबार के अलावा पुल–आउटस निकालकर स्थानीय खबरों को देना चाहिए। कुछ अखबारों ने ऐसा किया भी है। मुझे लगता है कि अखबारों के राष्ट्रीय चरित्र को बरकरार रखना चाहिए।

मार्कंडेय काटजू ने कुछ दिनों पूर्व कहा था कि पत्रकारों को दर्शनशास्त्र, भूगोल एवं इतिहास की जानकारी नहीं है। आप की क्या राय है ?

मार्कंडेय काटजू कुछ न कुछ बोलते ही रहते हैं। उनकी बात को बहुत गंभीरता से नहीं लेना चाहिए। लेकिन मुझे लगता है कि कमी तो है। प्रभाष जी का ध्यान आता है वह सुबह ही समाचार पत्रों को किताब की भांति पढ़ा करते थे। राम बहादुर राय जी तो उनसे भी आगे हैं वे

लाल पेन लेकर अखबार पढ़ते हैं और खामियों को चिन्हित करते हैं। इसलिए पत्रकार को अपडेट तो होना ही चाहिए। मार्कंडेय काटजू कहें या कोई कहे लेकिन पत्रकार जिस विषय की रिपोर्टिंग करे उसका उसे पर्याप्त ज्ञान अवश्य होना चाहिए। आम आदमी की धारणा है कि पत्रकार हमसे ज्यादा जानता है यह धारणा बनी रहनी चाहिए।

पत्रकारिता शिक्षण देने वाले संस्थानों की संख्या बढ़ी है। लेकिन पत्रकारिता का स्तर गिरा है। क्या आप पत्रकारिता के पाठ्यक्रम में बदलाव की आवश्यकता समझते हैं ?

मैं भी पत्रकारिता पढ़ाने के लिए जाता हूं। लेकिन मेरा मानना है कि पत्रकारिता पढ़ने की चीज नहीं है, शुरूआत तो प्रैक्टिकल से ही होनी चाहिए। यदि आप मुंहजबानी ऑपरेशन करना सिखाएंगे तो वह फेल ही होगा। निश्चित रूप से पत्रकारिता का स्तर तो गिरा ही है, लेकिन यह तो आजादी के बाद से ही जारी है।

अखबारों के टेबलॉयड संस्करण ने भाषा के स्वरूप को बिगाड़ दिया है, ऐसा लोग मानते हैं। क्या ऐसी भाषा पत्रकारिता में अनिवार्य है?

भाषा के स्वरूप को बनाए रखना बहुत जरूरी है। भाषा की वर्तनी भी बननी चाहिए। मैं पत्रकारों की संस्था नेशनल यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट से भी जुड़ा रहा हूं, वहां के राजेन्द्र प्रभु ने तो कहा कि हमें इस विषय पर सुप्रीम कोर्ट में पीआईएल दाखिल करनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को भाषा से खिलवाड़ का अधिकार नहीं दिया जा सकता है। यह तो चल जाएगा कि पुस्तक के बदले किताब लिखा जाए लेकिन बुक लिखना सही नहीं है। जब हमें अपनी भाषा में शब्द उपलब्ध हैं तो हिंदी में लिखने में क्या आपत्ति है। आधी हिंदी और आधी अंग्रेजी की क्या आवश्यकता है। इस पर कड़ाई से रोक लगनी चाहिए। असल में खतरा यह भी है कि जब पत्रकारिता पर इस प्रकार का भी कोई विषय उठता है तो उसे अभिव्यक्ति की आजादी पर खतरे के रूप में प्रचारित किया जाता है। पत्रकारों की संस्थाओं एवं प्रेस काउंसिल में पत्रकारिता के स्वरूप और भाषा पर बात अवश्य होनी चाहिए।

क्या पत्रकारिता को लोकपाल के दायरे में लाया जाना चाहिए?

नहीं, मुझे जरूरी नहीं लगता। पत्रकारों की अपनी संस्था होनी चाहिए और प्रेस काउंसिल को भी मजबूत किया जाना चाहिए। मान लीजिए मैंने किसी की अवमानना की है तो कोई भी कोर्ट जा सकता है। ऐसे में लोकपाल की आवश्यकता नहीं रह जाती है।

हाल ही में संसद में एक सवाल के जवाब में सरकार का जवाब था कि राज्य सरकारों एवं संस्थानों के रवैये के कारण मजीठिया वेज बोर्ड लागू कराने में समस्या आ रही है। आपकी क्या राय है?

पिछले दो दशकों में कांट्रेक्ट सिस्टम की शुरूआत हुई है, जो नहीं होनी चाहिए थी। यदि हर साल पत्रकार मीडिया मालिकों के आगे खड़ा हो कि मेरी नौकरी आगे रहेगी या नहीं, तब वह स्वतंत्र पत्रकारिता कर ही नहीं पाएगा। कांट्रेक्ट सिस्टम का विरोध किया जाना चाहिए लेकिन पत्रकार संगठनों की कमजोरी के कारण यह नहीं हो पा रहा है। वेतन बोर्ड को सरकार ने बनवाया और यह त्रिपक्षीय था। इसके अध्यक्ष तो जज हैं न कि पत्रकार। इसमें पत्रकार, अखबार मालिक और सरकार तीनों शामिल थे। इसने जो सिफारिशें की उसे सरकार ने भी सही माना लेकिन अब सरकार अपनी जिम्मेदारी से बच रही है। दरअसल, कुछ अखबारों के मालिक सरकार को यह संदेश देने में कामयाब रहे कि इससे पत्रकारों को कोई लाभ होने वाला नहीं है। यह बहुत गलत बात है कि सरकार ही वेजबोर्ड बनाए और वही उसकी सिफारिशें न लागू करवाए। इसको लागू कराने की सीधी जिम्मेदारी सरकार की है। सुप्रीम कोर्ट ने भी कहा कि हमने इस पर कोई स्टे नहीं लगाया है। इसलिए इसको लागू कराने की जिम्मेदारी पूर्णरूप से सरकार की है।

पत्रकारिता से जुड़ा आपका कोई रोचक अनुभव?

जब मैं मेरठ में रिपोर्टिंग पर था। उस दौरान कुछ लोगों ने एक लड़की का चेहरा जला दिया था, यह खबर आई थी। उसके कुछ वर्ष बाद उस लड़की के पिता मेरे दफ्तर में आए तो उन्होंने कहा कि मेरी लड़की के बारे में आप एक खबर लगा दो। उनका मानना था कि इस खबर के बाद सरकार से कुछ सहायता मिल सकेगी। उनको उसका लुधियाना के अस्पताल में इलाज करवाना था। मैंने वह खबर इस उददेश्य से नहीं लिखी कि उसकी शादी हो जाएगी। लेकिन एक फौज के जवान ने उस खबर को पढ़कर प्रभाष जी को चिट्ठी भेजी। वह चिट्ठी प्रभाष जी ने मुझे भेजी। उसने लिखा था कि वह उस लड़की से शादी कर लेगा, तो सरकार की ओर से उसकी पत्नी के रूप में उसका इलाज हो जाएगा। फिर लड़की के पिता को मैंने फौजी के घर भेजा। उसके बाद मैंने और पत्रकार साथियों ने मिलकर पैसे एकत्र किए और उसकी शादी करवाई। उसके बाद यह भी भय था कि कहीं वह उस लड़की को छोड़ न दे तो वर्ष भर उसकी मॉनिटरिंग भी की। यह अपने आप में महत्वपूर्ण अनुभव था।

पत्रकारिता में नए आने वाले पत्रकारों को आप क्या संदेश देना चाहते हैं?

पत्रकारिता का अर्थ खिलाफ लिखना ही नहीं है। आप सकारात्मक लिखकर भी बेहतर पत्रकारिता कर सकते हैं। समाज में बहुत कुछ सकारात्मक भी हो रहा है। आज भी इस स्वार्थी समाज में बहुत से लोग निःस्वार्थ भाव से समाज सुधार के कार्यों में लगे हुए हैं। उन्हें भी दिखाया जाना चाहिए। यदि आज के पत्रकार यह करें तो समाज का बहुत भला होगा। ■

'केसरी' पत्रकार लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

सूर्यप्रकाश

क्रांति, आंदोलन एवं किसी अभियान की सफलता में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। विचारधाराओं के प्रसारण एवं उसके स्थापन में भी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय पत्रकारिता के संदर्भ में यह और भी अधिक दावे से कहा जा सकता है कि पत्रकारिता ने राष्ट्रवादी विचारों के प्रसार एवं जनमत निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत में पत्रकारिता ने अपने उद्भव के साथ ही राष्ट्र के पुनर्जागरण में अपनी भूमिका का निर्वहन करना प्रारंभ कर दिया था। विभिन्न क्रांतिकारियों ने भी पत्रकारिता के माध्यम से स्वदेशी, स्वराज्य एवं स्वाधीनता के विचारों को जनसामान्य तक पहुंचाने का कार्य किया जिनमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक प्रमुख व्यक्ति थे।

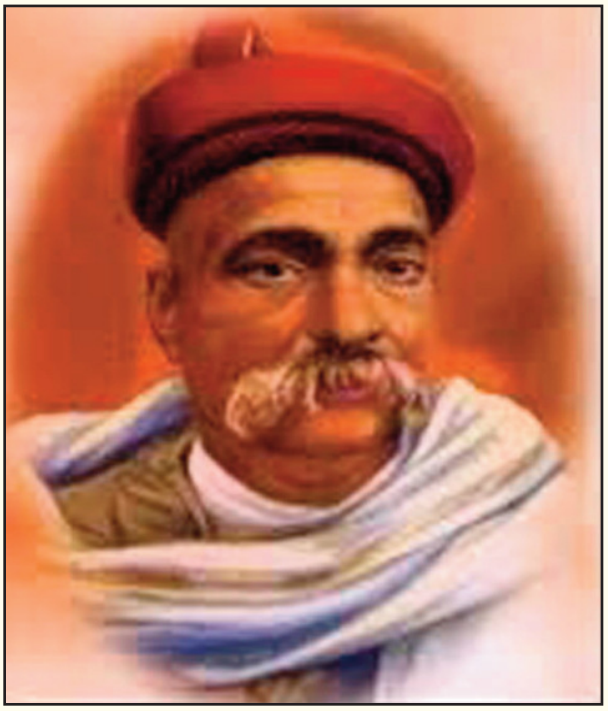

लोकमान्य तिलक का जन्म 23 जुलाई, 1856 को महाराष्ट्र के रत्नागिरी में हुआ था। वह भारत की उस पीढ़ी के व्यक्ति थे जिन्होंने आधुनिक कॉलेज की शिक्षा पाई। संस्कृत के प्रकांड पंडित, देशभक्त एवं जन्मजात योद्धा तिलक भारत में स्वदेशी, स्वराज्य एवं स्वसंस्कृति को पुनः स्थापित करने के लिए आजीवन प्रयासरत रहे। सन 1885 में अंग्रेज अधिकारी ए. ओ. ह्यूम के नेतृत्व में स्थापित कांग्रेस नागरिक सुविधाओं के लिए प्रस्ताव पारित करने और अनुनय–विनय करने तक ही सीमित थी जिसे लोकमान्य तिलक ने सन 1905 के बाद से राष्ट्रवादी स्वरूप प्रदान किया और ''स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और हम इसे प्राप्त करके रहेंगे'' का नारा दिया। इसके बाद कांग्रेस दो दलों में विभाजित हो गई नरम दल एवं गरम दल।

सन 1905 में ब्रिटिश शासन की बंग विभाजन की योजना ने तत्कालीन कांग्रेस में भूचाल ला दिया था। कांग्रेस को अनुनय–विनय की नीति से निकालकर तिलक ने इसे प्रखर राष्ट्रवादी स्वरूप दिया था। इसमें उनके पत्रों 'मराठा' एवं 'केसरी' की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 'निबंध माला' पत्रिका के संपादक विष्णु कृष्ण चिपलूणकर एवं गोपालकृष्ण आगरकर के सहयोग से तिलक ने 1880 को न्यू इंग्लिश स्कूल की स्थापना की थी जो बाद में डेकन एजुकेशन सोसायटी के रूप में विकसित हुआ। इसके साथ ही 'मराठा' और 'केसरी' का प्रकाशन भी प्रारंभ हुआ। इन पत्रों को छापने के लिए एक प्रेस खरीदा गया, जिसका नाम 'आर्य भूषण प्रेस' रखा गया। तिलक, आगरकर और चिपलूणकर अपनी संस्थाओं के लिए शारीरिक श्रम से भी नहीं हिचकते थे। प्रेस के टाइप, केसों आदि को ढोकर नये स्थान पर खुद ले गए थे और स्कूल खुलने के समय वे इमारत को स्वयं झाड़ते और साफ करते थे। जब 'मराठा' और 'केसरी' निकलना शुरू हुए, तो वे समाचार पत्र की प्रतियों को स्वयं ही ग्राहकों तक पहुंचाते थे।

'केसरी' के प्रकाशन के बाद उन्होंने उसके स्वरूप एवं पत्रकारिता के अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा था–

''केसरी निर्भयता एवं निष्पक्षता से सभी प्रश्नों की चर्चा करेगा। ब्रिटिश शासन की चापलूसी करने की जो प्रवृत्ति आज दिखाई देती है, वह राष्ट्रहित में नहीं है। 'केसरी' के लेख इसके नाम को सार्थक करने वाले होंगे।''

कांग्रेस में नरम दल और गरम दल के आधार पर विभाजन होने के पश्चात तिलक के पत्रों ने गरम दल की विचारधारा को स्थापित करने में मदद की थी। स्वदेशी एवं स्वराज्य के विचारों को तिलक ने अपने पत्र 'मराठा' और 'केसरी' के माध्यम से ही प्रतिपादित किया था। लोकमान्य चार सूत्री कार्यक्रम बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज आंदोलन के माध्यम से देश को जागृत करने का कार्य कर रहे थे। भारतवासियों को बहिष्कार आंदोलन का मर्म समझाते हुए तिलक ने 'केसरी' के संपादकीय में लिखा था–

''लगता है कि बहुत से लोगों ने बहिष्कार आंदोलन के महत्व को समझा नहीं। ऐसा आंदोलन आवश्यक है, विशेषकर उस समय जब एक राष्ट्र और उसके विदेशी शासकों में संघर्ष चल रहा हो। इंग्लैंड का इतिहास इस बात का ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करता है कि वहां की जनता अपने सम्राट का कैसे नाकों चने चबवाने के लिए उठ खड़ी हुई थी, क्योंकि सम्राट ने उनकी मांगे पूरी करने से इंकार कर दिया था। सरकार के विरूद्ध हथियार उठाने की न हमारी शक्ति है न कोई इरादा है। लेकिन देश से जो करोड़ों रूपयों का निकास हो रहा है क्या हम उसे बंद करने का प्रयास न करें। क्या हम नहीं देख रहे हैं

कि चीन ने अमेरिकी माल का जो बहिष्कार किया था, उससे अमेरिकी सरकार की आंखें खुल गईं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है कि एक परतंत्र राष्ट्र, चाहे वह कितना ही लाचार हो, एकता साहस और दृढ़ निश्चय के बल पर बिना हथियारों के ही अपने अंहकारी शासकों को धूल चटा सकता है। इसलिए हमें विश्वास है कि वर्तमान संकट में देश के दूसरे भागों की जनता बंगालियों की सहायता में कुछ भी कसर उठा न रखेगी।'' (तिलक से आज तक, हंसराज रहबर)

लोकमान्य तिलक ऐसे क्रांतिकारी थे, जिन्होंने न केवल आंदोलन चलाए बल्कि, आंदोलनों को पत्रों के माध्यम से वैचारिक आधार भी प्रदान किया। 'मराठा' और 'केसरी' के माध्यम से उन्होंने गणेश उत्सव, शिवाजी उत्सव एवं स्वदेशी के उपयोग में लोगों से भागीदार बनने की अपील की। लोकमान्य जो आंदोलन चलाते उसका उनके पत्र बखूबी आह्वान करते थे। तिलक ने ही स्वदेशी के उपयोग एवं ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया था जिसका अनुसरण आगे चलकर महात्मा गांधी ने भी किया था। तिलक ने स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के राजनीतिक महत्व को उजागर किया। उन्होंने लोगों से कहा कि चाहे कुछ भी त्याग करना पड़े, वे स्वदेशी का उपभोग करें। अगर कोई भारतीय वस्तु उपलब्ध न हो तो उसके स्थान पर गैर ब्रिटिश वस्तु इस्तेमाल में लाएं। उन्होंने लिखा–

''ब्रिटिश सरकार चूंकि भारत में भय से मुक्त है, इससे उसका सिर फिर गया है और वह जनमत की नितान्त उपेक्षा करती है। वर्तमान आंदोलन से जो एक सार्वजनिक मानसिकता उत्पन्न हो गई है, उससे लाभ उठाकर हमें एक ऐसे केन्द्रीय ब्यूरो का संगठन करना चाहिए जो स्वदेशी माल और गैरब्रिटिश माल के बारे में जानकारी एकत्रित करे। इस ब्यूरो की शाखाएं देश भर में खोली जाएं, भाषण और मीटिंगों द्वारा आंदोलन के उद्देश्य की व्याख्या की जाये और नई दस्तकारियां भी लगाई जाएं।''

लोकमान्य तिलक ने जिस सोसायटी की स्थापना अपने मित्रों के साथ मिलकर की थी, सैद्धांतिक अतंर्विरोधों के कारण उन्होंने उस सोसायटी से 14 अक्टूबर, 1890 को इस्तीफा दे दिया। उन्होंने मराठा और केसरी को भी सोसायटी से अलग कर लिया। इन पत्रों पर उस वक्त 7,000 का ऋण था, उसे चुकाने की जिम्मेदारी भी उन्होंने स्वयं पर ली। सोसायटी से अलग होने के पश्चात लोकमान्य ने स्वयं को पूरी तरह जनकार्य में ही झोंक दिया। लोकमान्य तिलक के जीवनीकार टी.वी पर्वते ने उनके 'मराठा' और 'केसरी' पत्रों के लिए समर्पण के बारे में लिखा है कि–

''1891 से 'केसरी' और 'मराठा' तिलक की ही मिलकियत बन गए थे। कई साल तक उनमें घाटा होता रहा, लेकिन इन पत्रों ने उनके जीवनक्रम को बहुत ही प्रभावित किया। जनता की हर शिकायत और हर समस्या पर प्रति सप्ताह लिखते रहने से वे जनसमस्याओं के जननेता और प्रवक्ता बन गए।''

लोकमान्य तिलक ने 'केसरी' एवं 'मराठा' को सुचारू रूप से चलाने

के लिए अपना बहुत कुछ दांव पर लगाया था। उनके यह पत्र चूंकि घाटे का सौदा थे, इसलिए अपनी जीविका के लिए उन्होंने अपने कानून के ज्ञान का सहारा लिया। वकालत से उन्हें दो सौ रूपये मासिक की आय हो जाती थी, जिससे उनके परिवार का खर्च आसानी से चल जाता था। पत्रों को उन्होंने कभी भी लाभ का धंधा नहीं बनाया।

लोकमान्य तिलक के लेख क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणास्रोत के समान थे। उनका लेखन एवं मागदर्शन क्रांतिकारियों को ऊर्जा प्रदान करता था। यही कारण था कि तिलक के पत्र 'मराठा' और 'केसरी' ब्रिटिश सरकार को बिल्कुल न सुहाते थे। लोकमान्य भारत के उन प्रमुख क्रांतिकारियों में से थे जिन्हें अपने लेखों के कारण जेलयात्राएं भी करनी पड़ीं किंतु वे सदैव अपने पत्रकारीय धर्म पर अडिग रहे। इसका एक उदाहरण है–

सन 1902 में पुणे में प्लेग फैला था। अनेकों लोग भयवश स्थानांतरित हो गए। 'केसरी जहां छपता था, एक दिन उस आर्यभूषण मुद्रणालय के स्वामी ने लोकमान्य को अपनी अड़चन बताई, ''मुद्रणालय में कीलें जोड़नेवाले कर्मचारियों की अनुपस्थिति बढ़ रही है, जिससे प्लेग के न्यून होने तक 'केसरी' की प्रति समय पर निकलेगी कि नहीं कह नहीं सकते।''

तिलक कड़े स्वर में बोले, ''आप आर्यभूषण के स्वामी और मैं केसरी का संपादक, यदि इस महामारी में हम दोनों को ही मृत्यु आ गई, तब भी अपनी मृत्यु के पश्चात पहले 13 दिनों में भी 'केसरी' मंगलवार की डाक से जाना चाहिए।'' (दैनिक सनातन प्रभात)

लोकमान्य तिलक क्रांतिधर्मी पत्रकार थे। जिन्होंने पत्रकारिता और स्वाधीनता तथा स्वदेशी के आंदोलन को एक–दूसरे के पूरक के रूप में विकसित किया था। लोकमान्य तिलक पत्रकारिता जगत के लिए प्रेरणापुंज हैं, जिन्होंने पत्रकारिता को अपने उददेश्यों की प्राप्ति के लिए मुखरता प्रदान की। 1 अगस्त, 1920 को लोकमान्य तिलक का अचानक देहांत हो गया। किंतु, उन्होंने पत्रकारिता जगत में समर्पण भाव से कार्य करने का जो मापदंड स्थापित किया था, वह आज भी प्रासंगिक है। ■

न्यू मीडिया कहा जाए या कुछ और?

गत 12 अगस्त को भोपाल में मीडिया चौपाल का आयोजन किया गया जिसमें बड़ी संख्या में वेब मीडिया से जुड़े लिक्खाड़ जुटे। धीरे से ही सही परंतु एक विषय वहां की चर्चा में उभरा कि क्या अब समय आ गया है जब न्यू मीडिया का नामकरण किया जाना चाहिए? कब तक इसे न्यू मीडिया कहा जाता रहेगा? इसे वेब मीडिया ही कहा जाय अथवा कुछ और? जिस तरह ढ़ाबे पर काम करने वाला छोटू जिंदगी भर छोटू ही कहलाता है वैसे ही यह न्यू मीडिया शब्द भी तो वेब मीडिया के लिये रूढ़ नहीं हो जायेगा? आदि प्रश्न भी समीचीन है। इन प्रश्नों पर आपका क्या मत है, यह बतायें। हो सके तो कोई नया नाम भी सुझायें। हो सकता है आपका दिया शब्द ही मीडिया इतिहास में एक युग का प्रतीक बन जाये।

नये मीडिया के नामकरण को लेकर सवाल उठने लगे हैं। यह स्वाभाविक भी है और उचित भी। मेरा ऐसा मानना है कि जब तक कोई और नया मीडिया सामने नहीं आ जाता तब तक यह नया मीडिया के नाम से ही जाना जाएगा। लेकिन फिर भी कभी न कभी हमें इस नये मीडिया के संज्ञाकरण की प्रक्रिया से गुजरना ही होगा। सही संदर्भ और सार्थक परिप्रेक्ष्य में देखें तो इसे 'वेब मीडिया' कहना उचित होगा। इसके पीछे मेरा तर्क यह है कि इंटरनेट पर किसी भी वेबसाइट को खोलने के लिए हमें www लिखना ही पड़ता है और इसका अर्थ है World Wide Web। इसलिए Web शब्द ही इस नये मीडिया का आधार है। 'वेब पत्रकारिता' कहना भी उचित नहीं होगा क्योंकि यह पत्र की अवधारणा से मुक्त है।

संजीव कुमार सिन्हा, प्रवक्ता.कॉम

न्यू मीडिया को वेब मीडिया कहा सकता है। इसके अलावा सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव के कारण इसे 'इंटरेक्टिव मीडिया भी कहा जा सकता है। नाम चाहे कुछ भी हो किन्तु ये बदलाव जरूरी है क्योंकि आज जो न्यू मीडिया है वो कल ओल्ड मीडिया हो जायेगा। मेरी समझ से ये बदलाव पाठ्यक्रम में भी होना चाहिए क्योंकि हमारे उभरते पत्रकारों (छात्र–छात्राओं) को पता होना अवश्यक है।

नीरज खत्री, जनसत्ता

वर्तमान में जनता तक अपनी बात पहुंचाने में मीडिया का बहुत अहम योगदान है। यदि मीडिया की बात की जाए तो इसे मुख्य रूप से तीन वर्गों में बांटा गया है– प्रिन्ट, इलैक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया। कई बुद्धिजीवियों का मानना है कि न्यू मीडिया केवल पढ़े–लिखे लोगों के लिए है और यह काफी हद तक सही भी है। बावजूद इसके साइबर दुनिया के इस दौर में न्यू मीडिया का प्रचलन अपेक्षा के अनुरुप बढ़ा है। इसका मुख्य कारण अन्य मीडिया की तुलना में इसकी बेहतर नेटवर्किंग को माना जा सकता है जो यह दर्शाता है कि इस मीडिया का उपयोग करने वाले यूजर्स का ग्राफ तेजी से बढ़ा है। इसलिए अन्य दो मीडिया की तरह वक्त रहते इसका नामकरण हो जाए तो बेहतर है। बोलचाल की भाषा में कई लोग इसे 'वेब चैनल' भी कहते हैं लेकिन यह ठीक नहीं है। नाम हमेशा गुणों के अनुरुप होना चाहिए। इस मीडिया का संबंध इंटरनेट या वेब से होने के कारण इसे 'वेब मीडिया' या 'वेब जर्नलिज्म' कहा जा सकता है।

मनोज सिंह कुशवाहा, इंडियन कोऑपरेटिव.कॉम

जिस तरह हर पेशे का अपना नाम है उसी तरह वेब मीडिया नाम क्यों नहीं हो सकता? हमने प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया नाम को भी तो स्वीकार किया है, तो फिर वेब मीडिया को अपनाने में क्या परेशानी है! इस बात पर भी गौर किया जाए कि एक नए नाम से इसकी अपनी अलग पहचान भी बनेगी।

राहुल पार्चा, स्वतंत्र पत्रकार

न्यू मीडिया का नाम बदलने की आवश्यकता नहीं है। यह एक ऐसा मंच है जो सरकार को जनता से जोड़ता है और लोगों को जागरूक बनाता है। न्यू मीडिया के द्वारा उन शिक्षित लोगों में वोट देने के प्रति जागरूकता आयी है जो कभी वोट नहीं देते थे। जैसा कि हर सिक्के के दो पहलू होते हैं– सकारात्मक और नकारात्मक। ठीक उसी प्रकार न्यू मीडिया भी आज नकारात्मक व पूर्वाग्रही होता जा रहा है लेकिन हम इस तथ्य को भी नहीं ठुकरा सकते कि न्यू मीडिया लोकतंत्र में बहुत बड़ी भूमिका निभा रहा है।

पारस सिंह,आउटलुक

मुझे नहीं लगता कि न्यू मीडिया का नाम बदलना चाहिए। जो युवा व पेशेवर लोग इसे प्रयोग में लेते हैं उन्हें इसके नाम से फर्क नहीं पड़ता और फर्क पड़ना भी नहीं चाहिये क्योंकि नाम में क्या रखा है। न्यू मीडिया के नाम से इसे पढ़ने वाले और देखन वालों की संख्या पर कोई फर्क भी नहीं पड़ेगा।

प्रियंका सरीन, हिन्दुतान

■

टैम पर धोखाधड़ी का आरोप

देश की सबसे प्रतिष्ठित मीडिया रिसर्च कंपनी टैम पर से केवल मीडिया आलोचकों का ही नहीं बल्कि खुद टीवी चैनल का भी विश्वास उठने लगा है। एनडीटीवी ने हाल ही में टैम को पैसे लेकर रेटिंग आंकड़ों पर छेड़छाड़ करने का आरोप लगाते हुए अदालत में घसीटा है। यह मुकदमा न्यूयॉर्क स्टेट लॉ के तहत अमेरिका में दायर किया गया है।

बताते चले कि एनडीटीवी ने यह मुकदमा निल्सन और कंटर मीडिया के खिलाफ दायर किया है जिनका संयुक्त उपक्रम टैम है। मामले को देखते हुए सरकार इसे एकाधिकार विरोधी इकाई व दूरसंचार नियामक को सौंपने की योजना बना रही है। टैम के आंकड़ों पर विज्ञापनदाताओं ने भी कई बार उंगली उठाई है किन्तु प्रतिस्पर्धा के अभाव के कारण कोई ठोस नतीजा नहीं निकला है।

इस संबंध में भारत की अग्रणी कार निर्माता कंपनी मारूति सुजुकी के कार्यकारी निदेशक शशांक श्रीवास्तव का कहना है कि वह पूरी तरह से टैम के आंकड़ों पर भरोसा नहीं कर सकते जिसके चलते मारूति के शोरूम पर रिसर्च डेस्क बनाया गया है। शशांक ने कहा कि टैम द्वारा रेटिंग निर्धारित करने के लिए सैंपल के आकार और मीटरों की संख्या को लेकर पहले भी कई विवाद होते रहे हैं, किन्तु टैम का विकल्प न होने के कारण इसके आंकड़ों पर निर्भर रहना पड़ता है। उन्होंने बताया कि टैम के आंकड़ों की सत्यता जांचने के लिए मारूति सुजूकी अन्य सूत्रों पर भी खर्च करती है। उल्लेखनीय है कि मारूति सुजूकी का विज्ञापन खर्च सालाना लगभग 200 करोड़ है जिसका 60 प्रतिशत वह टेलीविजन पर खर्च करती है।

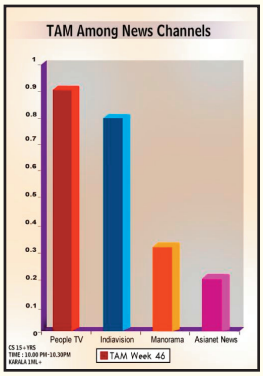

वहीं सैम्संग, डाबर, हिंज जैसे बड़े ब्राण्डों के लिए मीडिया में स्पेस खरीदने वाली कंपनी स्टारकोम के कार्यकारी निदेशक सुनील मेनन का कहना है कि अन्य विकल्प न मौजूद होने के कारण विज्ञापनदाताओं को टैम के आंकड़ों पर निर्भर रहना पड़ता है। उन्होंने कहा कि हम पूरी तरह से टैम के आंकड़ों पर निर्भर नहीं रह सकते जिसके कारण मीडिया में स्पेस खरीदने के लिए हम अन्य मापदण्डों पर भी ध्यान देते हैं।

उल्लेखनीय है पिच मेडिसन मीडिया की रिपोर्ट के मुताबिक भारत का विज्ञापन उद्योग 25 हजार 594 करोड़ तक पहुंच गया है जो पिछले साल से 8 प्रतिशत ज्यादा है। ऐसे में यदि एनडीटीवी का आरोप सही साबित होता है तो प्रसारण एवं विज्ञापन उद्योग पर गंभीर परिणाम देखने को मिलेंगे।

48 साल बाद हटी म्यांमार में प्रेस सेंसरशिप

म्यांमार की असैन्य सरकार ने लोकतंत्र की दिशा में बड़ा कदम उठाते हुए स्थानीय प्रकाशकों व मीडिया पर लगी 48 साल पुरानी सेंसरशिप हटा दी है। हालांकि मीडिया को आजादी अभी आंशिक तौर पर ही मिली है किन्तु इसकी शुरूआत ही एक बड़ा कदम माना जा रहा है।

बताते चलें कि प्रेस पर यह सेंसरशिप 6 अगस्त 1964 को लगाई गयी थी जिसे वर्तमान सरकार ने 20 अगस्त 2012 को समाप्त किया। इसके तहत 300 अखबारों व पत्रिकाओं को कम संवेदनशील सामग्री प्रकाशित करने की अनुमति मिल गई है और साथ ही 30 हजार इंटरनेट साइट्स पर से प्रतिबंध हटा लिया गया है, जबकि फिल्में अब भी सेंसरशिप के दायरे में हैं। राष्ट्रपति थीन शीन की सुधारवादी सरकार ने पिछले साल प्रकाशकों को कुछ छूट जरूर दी थी, लेकिन मीडिया पर सेंसरशिप यथावत बनी रहने दी थी।

इस संबंध में सरकारी प्रेस छानबीन और पंजीकरण बोर्ड 'पीएसआरबी' के उप महानिदेशक टिंट स्वे ने कहा– ''हमने प्रेस सेंसरशिप को समाप्त कर दिया है किन्तु पीएसआरबी अपना काम करेगा। बोर्ड मीडिया का पंजीकरण प्रकाशन के बाद ही करेगा। म्यांमार सूचना मंत्रालय को अभी दो कार्य करने हैं। एक तो यह है कि मंत्रालय को मीडिया कानूनों का मसौदा तैयार करना है और दूसरा है कि प्रेस कानून लागू होने से पहले सेंसरशिप नीति का नए संविधान के साथ तालमेल बनाना है।

उल्लेखनीय है कि सैन्य सरकार ने मीडिया पर कड़े प्रतिबंध लगा रखे थे। अख़बारों के साथ–साथ काल्पनिक कहानियों व गीतों के बोल पर भी प्री पब्लिकेशन लागू था। उस समय मीडिया विवादास्पद राजनीतिक व सामाजिक विषयों को उठाने से बचता था। पिछले साल असैन्य सरकार के आने से लोकतंत्र की दिशा में कई सुधारवादी कदम उठाए गए हैं। सरकार ने कई कैदियों को रिहा करने के साथ ही लोकतंत्र की समर्थक आंग सांग सू की को चुनाव लड़ने की इजाजत भी दे दी है।

1. **एनीमेशन–** टेलीविजन में इस शब्द का प्रयोग ग्राफिक्स द्वारा स्क्रीन पर दी जाने वाली जानकारी को दिखाने के प्रयास के रूप में समझा जा सकता है।

2. **बाई–मीडियल –** रेडियो और टेलीविजन दोनों में एक साथ संवाद भेजने वाला रिपोर्टर।

3. **बूम–माइक –** कैमरे से दूर खड़े किसी व्यक्ति या आसपास की आवाज को रिकॉर्ड करने के लिए साउंड रिकॉर्डिस्ट के द्वारा लम्बी छड़ में एक माइक जोड़ा जाता है।

4. **क्यू लाइट –** कैमरे के ऊपर लाल रंग की छोटी सी लाइट, जिसके जल जाने पर एंकर को पता चल जाता है कि कौन सा कमरा इस समय लाइव चालू है।

5. **डिसॉल्व –** एक चित्र में से दूसरा चित्र उभारने की वीडियो प्रक्रिया। किसी स्टोरी को काव्यात्मक बनाने के लिए इसका प्रयोग होता है।

6. **आसपेक्ट रेशिया–** टेलीविजन पर दिखाये जाने वाले दृश्यों का अनुपात।